सेक्टर-7 डाकखाने की दुर्दशा

फरीदाबाद (चंद्र प्रकाश साथी) सेक्टर-7 स्थित डाकखाने की स्थापना सन 1976 में 1000 मकानों के लिए की गई थी। उस समय के कार्यभार के अनुसार यहां पर पर्याप्त स्टाफ की व्यवस्था थी। छ: डाकिये, एक वैन्डर, एक रजिस्ट्रीकर्ता हुआ करता था और डाक व्यवस्था सुचारु रूप से चल रही थी।

लेकिन अब सेक्टर - 7 स्थित डाकखाने को भारी अव्यवस्था का सामना करना पड़ रहा है। लोगों की डाक समय पर नहीं पहुंचती, रजिस्ट्री तथा मनीआर्डर के लिए घंटों लाइन में खड़ा रहना पड़ता है। आए दिन पोस्टमास्टर तथा कर्मचारियों को लोगों की शिकायतों का सामना करना पड़ता है। स्थानीय लोग तथा डाकखाने के कर्मचारी इस विकट समस्या से जूझ रहे हैं। लेकिन इसका समाधान कर पाने में पूरी तरह असमर्थ नजर आते हैं।

इस संवाददाता ने सेक्टर-7 स्थित डाकखाने के कर्मचारियों से बात की तो पता लगा कि जो डाकखाना सिर्फ 1000 मकानों की आवश्यकता की पूर्ति के लिए था, आज उसका कार्यभार 10 गुना बढ़ गया है। सेक्टर 5, 6, 7, 8, 9,10,11 एवं इंद्रा कॉलोनी, रामनगर, मिलाड कॉलोनी, संजय कॉलोनी, संजय मेमोरियल नगर, बाटा ट्रांसपोर्ट, बड़ोली बाईपास व सीही गांव की डाक इसी पोस्ट ऑफिस से उठाई जाती है। इस समय डाकखाने में 12 डाकिये, एक रजिस्ट्रीकर्ता, एक वैण्डर व दो छंटाईकर्ता कार्यरत हैं। प्रतिदिन डाकखाने में 28 से 30 बैग डाक की आवक है।

एक डाकखाने में सबसे महत्त्वपूर्ण और जिम्मेदारी का काम डाकिये का होता है। डाकखाने की आवक डाक के हिसाब से एक डाकिये के हिस्से में 2 बैग से उपर की डाक आती है।

सुबह करीब 11 बजे वह डाकखाने से डाक उठाता है और अपनी साइकिल पर लादकर चलता है। डाक से भरे बैग साइकिल के हैंडल और कैरियर पर इस कदर लदे होते हैं कि उसके लिए साइकिल चलाना भी मुश्किल हो जाता है। इसी तरह वह कभी धूप में जलता ठंड में ठिठुरता और बरसात में भीगता शाम तक डाक बांटता रहता है। एक बैंक और इण्डियन ऑयल का चपरासी दिन भर एसी में बैठकर जम्हाइयां लेता रहता है और डाकिये से लगभग दोगुनी ज्यादा तनख्वाह पाता है। लेकिन डाकिया चूंकि आम लोगों की सेवा करता है, इसलिए उसे भारी कष्टों का सामना करना पड़ता है। सेक्टरवासियों का कहना है कि कई बार तो आठ बजे तक भी डाकिया उनके घर डाक देकर गया है।

डाक विभाग के अनुसार एक डाकिया दिन में केवल 100 डाक ही बांट सकता है। लेकिन यहां डाकिया दिन भर गधे की भांति पिसता रहता है। फिर भी लोगों की सारी शिकायतें उसी के हिस्से में आती है, क्योंकि ऊपर तो उनकी कोई सुनने वाला है नहीं। सेक्टर-7 स्थित डाकखाने में 32 सालों के दौरान स्टाफ लगभग दो गुना बढ़ा है और वर्क लोड लगभग 10 गुना हो गया। डाकखाने के कर्मचारियों का कहना है कि अगर चार डाकियों की व्यवस्था और हो जाए तो डाक वितरण का कार्य सुचारु रूप से चल सकता है। लेकिन डाक विभाग इस ओर ध्यान नहीं दे रहा। ए.सी. और पंखे के नीचे बैठने वाले अफसरों के पद भरने से जनता की परेशानी हल नहीं होगी। उनका काम तो केवल विभागीय स्तर पर ही होता है। मेहनती और निम्न दर्जे के कर्मचारी ही जनता की पीड़ा से रू-ब-रू होते हैं। शहर में ऐसे भी डाकघर हैं जिनके पास काम का बोझ इतना कम है कि डाकिये तीन-चार घंटे में ही अपना काम खत्म करके गप्पे हांकते हैं। एक-दो सेक्टरों या एक-दो कॉलोनियों का कार्यभार उनके पास होता है। इस तरह की आरामदायक ड्यूटी उनको ही मिल पाती है जो उच्चाधिकारियों की सेवा तथा चापलूसी में लगे रहते हैं। हर विभाग में इस तरह की जुगाड़बाजी चलती है, चाहे वह बिजली विभाग हो, शिक्षा विभाग हो या फिर डाक विभाग। हर जगह काम के दबाव में वही कर्मचारी पिसता है जो जुगाड़ लगाने में असमर्थ होता है।

विभाग की इसी शोषण की नीति से जूझ रहा है सेक्टर-7 का पोस्ट आफिस। एक न तो वर्क लोड कम करने के उपाय किये जा रहे हैं और न ही स्टाफ बढ़ाये जा रहे हैं। इसी तरह की अव्यवस्थाओं के कारण आज कूरियर कंपनियों को बल मिल रहा है। भले ही यह सुविधा डाक सुविधा की अपेक्षा मंहगी पड़ती है, फिर भी लोग इन्हें भरोसेमंद मानते हैं। आज बड़े पैमाने पर बाज़ार में पांव जमा चुकी निजी कूरियर कंपनियां डाक विभाग के लिए एक चुनौती की तरह हैं, पर इसकी परवाह हाकिम-हुक्कामों को भला क्यों हो? उनके वेतन-भत्तों और सुविधाओं में बढ़ोत्तरी होती रहनी चाहिए।

सेक्टर-7 स्थित डाकखाने की स्थिति का विवरण तो महज उदाहरण के लिए दिया गया है। देश भर के सभी डाकखाने इसी तरह की अव्यवस्था से दो-चार हो रहे हैं। कोई इक्का-दुक्का डाकखाना ही होगा जिसके पास वर्कलोड सामान्य हो, वरना तो सभी डाकखानों में निम्न दर्जे के कर्मचारियों का बुरा हाल है।

कंप्यूटरीकरण से क्या लाभ ?

अब लगभग सभी डाकखाने कंप्यूटरीकृत हो चुके हैं। रजिस्ट्री, स्पीडपोस्ट, पार्सल, मनीआर्डर आदि काम कंप्यूटर द्वारा ही किये जाते हैं। डाकखानों के कंप्यूटरीकृत किये जाने के पीछे उद्देश्य यह था कि लोगों का काम जल्दी निबटे और काम तेजी से हो। पर स्टॉफ को कंप्यूटर संचालन का उचित प्रशिक्षण नहीं देने के कारण काम होने में पहले से भी देर होती है। अगर प्रशिक्षित स्टॉफ हो तब तो काम जल्दी निबटता है, पर ज्यादातर यही देखने में आया है कि कर्मचारी कंप्यूटर संचालन में दक्ष नहीं है। इसके अलावा कठिन समस्या तो तब आ खड़ी होती है जब बिजली चली जाये। बिजली जाते ही डाकखानों में रजिस्ट्री, स्पीडपोस्ट, पार्सल, मनीआर्डर आदि काम रुक जाते हैं, क्योंकि बिजली जाते ही कंप्यूटर बंद। बिजली कब आयेगी, इसका कोई ठिकाना नहीं और दूसरी तरफ लाइन में लगे लोगों की संख्या बढ़ती चली जाती है। इधर बिजली गई, उधर काऊंटर पर बैठा बाबू भी उठ कर गया। अब इस व्यवस्था का कोई विकल्प ही नहीं है। छोटे डाकघरों को छोड़ भी दें तो शहर के मुख्य डाकघर में बड़ा ही भारी-भरकम जनरेटर लगा दिखाई पड़ता है जो सिर्फ इसी के लिए है कि बिजली जाने पर उसे चला दिया जाये और काम जारी रहे। पर बिजली जाने पर कोई भी उसे चलाने की जरूरत नहीं समझता। बिजली घंटे भर भी न आये तो लोग पसीना-पसीना हुए लाइन में खड़े रहें। अगर यह पूछा जाता है कि जनरेटर क्यों नहीं चलाते तो जवाब मिलता है कि तेल नहीं है। एक आदमी तेल लाने गया हुआ है। लेकिन यह तो बहाना मात्र है। तेल के लिए आने वाला पैसा अधिकारी-कर्मचारी मिल-बांट कर खा लेते हैं। जनता अपना काम करवाने के लिए घंटों लाइन में खड़ी रहे तो उनकी बला से।

क्लिनिकल परीक्षण

मुनाफाखोरी ने एम्स में 49 अबोध बच्चों की बलि चढ़ाई

हाल ही में चिकित्साविज्ञान की देश की शीर्षस्थ संस्था अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान, एम्स में 49 मासूम बच्चों की क्लिनिकल परीक्षण के दौरान हुई मौत ने क्लिनिकल परीक्षण के फैलते जाल और वीभत्स स्थिति को स्पष्ट रूप से उजागर किया है।

एम्स के बाल रोग विभाग ने कई चरणों में नयी दवाओं का क्लिनिकल परीक्षण बच्चों पर किया। ध्यान देने लायक बात यह भी है कि इन बच्चों की उम्र एक साल से भी कम थी। देश के उन मासूम नौनिहालों पर ओल्मीसारटन व वालसारटन नामक दो दवाओं का उच्च रक्तचाप कम करने के लिए परीक्षण किया गया, पर दवा के क्या दुष्परिणाम होंगे, इस संबंध में सोचने की जरूरत नहीं समझी गई। दवा से होने वाले नुकसान और उसकी उचित मात्रा के बारे में कुछ भी जाने बिना ही उसे सीधे अबोध और दुधमुंहे बच्चों पर आजमाया गया। ज्ञात हो कि बच्चों के इलाज में दवा की मात्रा का विशेष महत्त्व होता है, क्योंकि की मात्रा में जरा-सी फेरबदल से दवा बच्चों के लिए जहर बन सकती है। इस प्रकरण में सबसे अधिक क्षोभकारी तो यह है कि उच्च रक्तचाप की जिस बीमारी के लिए क्लिनिकल परीक्षण किया जा रहा था, उस बीमारी का प्रचलन हमारे देश के बच्चों में नहीं है, तो किसके फायदे के लिए हमारे मासूमों की बलि दी गयी? तीसरे चरण के क्लिनिकल परीक्षण के लिए किसी भी दवा कम्पनी को तभी अनुमति मिलती है जब कम्पनी उस दवा को आम जनता को इस्तेमाल के लिए बाजार में उतारती है। हमारे देश में नियम-कानून से खेलना आम बात है। खासकर बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के लिए तो यहां का कानून बच्चों के हाथ का झुनझुना है। तभी तो 49 बेगुनाह और मासूम बच्चों की मौत के लिए जिम्मेदार ओल्मीसारटन ओर बालसारटन दवाओं के देश में तृतीय चरण के क्लिनिकल परीक्षण की अनुमति मिल गयी। इन कम्पनियों ने उपरोक्त दवाओं को भारतीय बाजार में उतारने के लिए कोई अनुमति भी नहीं ली थी, क्योंकि यहां इसकी कोई मांग ही नहीं है। फिर उनका बच्चों पर क्लिनिकल परीक्षण करके उनकी जान क्यों ली गयी?

जवाब साफ है कि ये परीक्षण आम भारतीय बच्चों की बीमारी को दूर करने की चिन्ता में नहीं, बल्कि इन कम्पनियों के यूरोपीय देशों में पेटेन्ट की अवधि बढ़वाने के लिए किये गये थे। अभी हाल ही में पेटा नामक अन्तरराष्ट्रीय एन.जी.ओ. ने एम्स में बन्दरों पर प्रयोग किये जाने से द्रवित होकर इसके खिलाफ भव्य प्रदर्शन किया। जानवरों की पीड़ा से व्यथित इन अभिजातों को 49 बच्चों की मौत से कोई लेना-देना नहीं। इसी तरह जब प्रिंस नाम का एक बच्चा गड्ढे में गिर गया था तो देश के टी.वी. चैनलों ने प्रिंस के एक-एक हरकत को कि कब उसने ऊंगली हिलाई, कैसे उसने बिस्कुट उठाया, कैसे मुंह तक लाया आदि को मसालेदार खबर बनाकर सनसनी फैलाने की कोशिश की थी। जो चैनल गड्ढे में पड़े प्रिन्स को भुनाने में पीछे रह गये, वे गड्ढे से बाहर निकलने के बाद उसके पीछे पड़े रहे। किसी ने उसे जांबाज बच्चा बताया तो किसी ने उसे इनाम देने की घोषणा करके गरीब बच्चों का उद्धारक होने का नाटक किया। लेकिन आज जब बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की मुनाफे की हवस ने 49 बच्चों की जान ले ली तो सारी मीडिया ने कमोबेश खामोश रहकर मुनाफाखोरों द्वारा मनाये जा रहे मौत के उत्सव में हिस्सा लिया। अगर वास्तव में उन्हें बच्चों से लगाव होता, नियम-कानूनों की धज्जियां उड़ाये जाने की फिक्र, मानवाधिकारों की रक्षा की फिक्र होती तो वे मानवता को जिन्दा रखने के लिए और देश की जनता को जागरूक करने के लिए आगे आते। लेकिन इस खबर को अखबारों के कोनों में यहां-वहां चन्द लाइनों की जगह ही मिल पायी। काट-छांट कर और छन-छनाकर यह खबर यदि बाहर आ पायी तो सिर्फ इसलिए कि यह 49 मासूमों की मौत का विकराल मामला था।

क्लिनिकल परीक्षण के कई गम्भीर दुष्परिणाम भी होते हैं, जैसे कई प्रकार के शारीरिक विकार होना, अपाहिज हो जाना, शारीरिक व मानसिक दुर्बलता, कैंसर जैसी बीमारी इत्यादि। हमारे देश के मीडिया को कहां इतनी फुर्सत है कि वह इन बारीक तथ्यों की जांच-पड़ताल और विश्लेषण करे तथा रोगियों को होने वाले दीर्घकालिक विकारों पर नजर रखे। इन बेचारों को तो फैशन-शो की खबर लाने, हीरोइनों के खाने-पहनने, उनकी शौपिंग-डेटिंग का पता लगाने और उनके शरीर के नाप-जोख का लेखा-जोखा लेने, अभिजातों की जीवनशैली का गुणगान करने तथा लोगों को टोने-टोटके और अंधविश्वास में धकेलने से ही फुर्सत नहीं मिलती। एम्स का बाल रोग विभाग ही 4,000 से से अधिक दवाओं के क्लिनिकल परीक्षण में संलग्न है। देशभर में कुल कितने क्लिनिकल परीक्षण चल रहे होंगे, इसका अंदाजा लगाना आसान नहीं है। आमतौर पर इस तरह के परीक्षण के आसान शिकार गरीब घरों के बच्चों ही होते हैं। हालांकि एम्स के अधिकारियों ने इस बात से इन्कार किया है कि क्लिनिकल परीक्षण में ज्यादातर बच्चे गरीब घरों के थे। लेकिन गरीबी रेखा से नीचे जीवनयापन करने वाले बच्चों की संख्या के बारे में पूछे जाने पर एम्स ने मौनव्रत धारण कर लिया। हर कोई जानता है कि किसी भी नयी दवा का परीक्षण किसी टाटा, अम्बानी, मन्त्री या नौकरशाह के बच्चे पर नहीं किया जा सकता। जाहिरा तौर पर देशी-विदेशी कम्पनियों की ऊंची-ऊंची इमारतें गरीबों की लाशों की बुनियाद पर ही खड़ी की जाती हैं।

■ देश-विदेश-8 से

अभी हाल ही में पेटा नामक अन्तरराष्ट्रीय एन.जी.ओ. ने एम्स में बन्दरों पर प्रयोग किये जाने से द्रवित होकर इसके खिलाफ भव्य प्रदर्शन किया। जानवरों की पीड़ा से व्यथित इन अभिजातों को 49 बच्चों की मौत से कोई लेना-देना नहीं।

■